

B. A. Hons II nd Sem

Political ideology

Unit 3

आदरशवाद

1. [परचिय](#)
2. [आदरशवादी की परभिषा](#)
3. [आदरशवाद का वकिस](#)
4. [आदरशवाद के प्रमुख सदिधांत](#)

परचिय

आदरशवाद शब्द अंग्रेजी के आइडिलजिम शब्द का रूपांतर है, जसिकी उत्पत्ति प्लेटो के वचिरवादी सदिधांत से हुई है। इस सदिधांत के अनुसार अंतमि सत्ता वचिरों अथवा वचिरवाद की है। इस प्रकार असली शब्द तो आइडिलजिम है किन्तु उच्चारण की सुवधि के लए इस शब्द में अंग्रेजी भाषा के (L) अक्षर को जोड़कर इसे आइडिलजिम की संज्ञा दी जाती है।

दार्शनकि सदिधांत के रूप में आदरशवाद वस्तु की अपेक्षा वचिरों, भावों तथा आदरशों के महत्त्व को स्वीकार करके प्राकृत की अपेक्षा मानव तथा उसके व्यक्तित्व के वकिस एवं आध्यात्मकि मूलयों को जीवन का लक्ष्य स्वीकार करता है जसिसे वभिन्निता में एकता (ईश्वर) का ज्ञान हो जाये।

आदरशवाद की यह धारणा है कि भौतिकि जगत की अपेक्षा आध्यात्मकि जगत आरथकि उत्कृष्ट एवं महान है। इसका कारण ये है कि भौतिकि जगत नाशवान है। अतः यह असत्य है। इसके वपिरीत आध्यात्मकि जगत वचिरों, भावों तथा आदरशों का संसार है जसिके ज्ञान से मन तथा आत्मा का ज्ञान होता है। इस दृष्टि से इस महान दर्शन के अनुसार केवल आध्यात्मकि जगत ही सत्य है। इससे परे तथा इसके पश्चात और कुछ नहीं है। इस प्रकार आदरशवाद, प्रकृतविद अथवा वैज्ञानकि तत्वों की अपेक्षा मानव तथा उसके वचिरों भावों तथा आदरशों की आध्यात्मकिता के अधकि महत्त्व देते हुए मानव तथा उसके मस्तिष्क के अध्ययन पर बल देता है।

इस दर्शन के अनुसार मानव की प्रकृति आध्यात्मकि होती है जसिकी अभवियकृति वह बौद्धकि, सौन्दर्यात्मक तथा धार्मकि क्षेत्रों में करता है। नमिन जन्मतुयों तथा पशुयों के साथ यह बात नहीं है। इसलए पशुओं की अपेक्षा मानव का जीवन अधकि श्रेष्ठ होता है।

आदरशवाद मानव के अध्ययन पर इसलए भी अधकि बल देता है, क्योंकि अन्य पशुओं की तुलना में मानव की वृद्धितथा वविक आदरशकृतयों भी आधकि होती है। अपनी प्रखर बुद्धि एवं वविक के बल पर मानव अन्य पशुओं की भांति वातावरण का देवल दस ही नहीं बना रहता अपत्ति उसमें आवश्यकतानुसार परवित्तन करके देवत्व का स्थान भी ग्रहण करता है तथा अनके प्रकार की मानसकि, कलात्मक तथा धार्मकि क्रयियाँ

में भाग लेते हुए धर्म तथा आचरणशास्त्र आदि को सृजन करता है। वर्तमान सांस्कृतिक तथा अध्यात्मिक वातावरण मानव ने स्वयं भी बनाया है।

संक्षेप में आदर्शवाद मानव तथा उसके विचारों, भावों तथा आदर्शों को महत्वपूर्ण स्थान देता है। इन्हीं आदर्शों तथा मूल्यों को प्राप्त करके मानव अपने व्यक्तित्व को विकसित करते हुए अपनी आत्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करके परमब्रह्म परमेश्वर के साथ साक्षात्कार कर सकता है। अतः आदर्शवाद के अनुसार वास्तविक सत्ता आध्यात्मिक है, भौतिक नहीं। इस दर्शन के अनुसार देश ततः काल में सृष्टिका क्रम नित्य तथा आध्यात्मिक संघ के प्रकटीकरण के कारण चलता है। इस प्रकार आदर्शवाद का क्षेत्र वशिष्व की अनादी, अपरमिति नित्य तथा अनन्त सत्ता है, न किंकोई तटस्थ एवं वरिधी संसार। होने के शब्दों में - “आदर्शवादी शक्षिष्य-दर्शन व्यक्ति को वह स्वरूप प्रदान करता है जिसमें वह अपने को मानसिक वशिष्व का पुर्नाश समझने लगे।”

आदर्शवादी दर्शन का प्रतिपादन, सुकरात, प्लेटो, डेकार्ट, स्पेनोजा, ब्रूकले, कान्ट, फटिश, शेलगी, हगिल, ग्रीन, शापन हावर तथा जेंटाइल आदि अनेक पाश्चात तथा वेदों एवं उपनिषदों के प्रणेता महरण्यों से लेकर अरवनिद घोष तक अनेक पूर्वी दार्शनिकों ने कहा है।

आदर्शवादी की परभिष्ठि

आदर्शवादी के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम नमिनलखिति पंक्तियों में प्रसिद्ध वदिवानों की परभिष्ठियों दे रहे हैं -

डी० एम० दत्ता- “आदर्शवादी वह सदिधांत है जो अन्तमि सत्ता आध्यात्मिक मानता है।”

जे० एस० रास- “आदर्शवादी दर्शन के बहुत से और विविध रूप हैं। परन्तु सबका आधारभूत तत्व यही है कि संसार का उत्पादन कारण मन तथा आत्मा है, किंवास्तविकता स्वरूप मानसिक स्वरूप का है।”

बुबेकर- “आदर्शवादी इस बाक का संकेत देते हैं कि संसार को समझने के लिए मन अथवा मस्तिष्क सर्वोपरि है। उनके लिए इससे अधिक और कोई बात नहीं है कि मन संसार को समझने में लगा रहे और किसी बात को इससे अधिक वास्तविकता नहीं की जा सकती है, क्योंकि मन से अधिक किसी और बात को वास्तविकता समझना स्वयं मन की कल्पना होगी।”

आदर्शवाद का वक्तिस

आदर्शवाद एक प्राचीन विचारधारा है। इसका वक्तिस उसी समय से माना जाता है जब से मनुष्य ने चन्द्रितन करना आरम्भ किया। इस दर्शन के इतिहास पर दृष्टिप्रति करने से पता चलता कि इसका ऐतिहासिक जन्म पाश्चात देशों में सुकरात के प्रसिद्ध शिष्य प्लेटो तथा भारत में वैदकि एवं उपनिषद् काल से हुआ। इस प्रकार पूरब तथा पश्चिम दोनों ने मिलकर आदर्शवाद के वक्तिस में अपना-अपना योग दिया है।

आदरशवाद के प्रमुख सिद्धांत

सम्पूरण जगत के दो रूप - आदरशवाद के अनुसार सम्पूरण जगत के केवल दो रूप हैं - (1) आध्यात्मकि जगत तथा (2) भौतकि जगत। आदरशवादी बहुत जगत की तुलना में भौतकि जगत तुलना में आध्यात्मकि जगत को अधिकि महत्त्व देते हैं। उनका वशिवास है कि अध्यात्मकि जगत की तुलना में भौतकि जगत केवल एक झलक मात्र है। इसका कारण यह है कि भौतकि तत्त्व नाशवान है। अतः यह असत्य है। इसके विपरीत आध्यात्मकि जगत सत्य है तथा यथारथ है। इसका ज्ञान पारपत करने से मन तथा आत्मा का ज्ञान प्राप्त होता है। अतः भौतकि तत्त्व की अपेक्षा आध्यात्मकि सत्ता अथवा अध्यात्मकि जगत का ज्ञान प्राप्त करना मानवीय जीवन का मुख्य लक्ष्य है। एच० एन० हारन के अनुसार - “आदरशवाद के अनुसार देश और काल में सृष्टिका क्रम नित्य तथा अध्यात्मकि सत्य के प्रकटीकरण के कारण चलता है।”

वस्तु की अपेक्षा वचिर का महत्त्व - आदरशवादीयों के अनुसार मन तथा आत्मा का ज्ञान केवल वचिरों के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इसीलए उन्होंने भौतकि जगत के पदार्थों तथा वस्तुओं की तुलना में वचिर एवं भाव जगत को अधिकि महत्त्वपूरण माना है। उसका पूरण वशिवास है कि वस्तु अथवा पदारथ असत्य है। केवल वचिर ही सत्य है, सर्वव्यापी हैं तथा अपरविरुद्धनशील हैं। इन्हीं वचिरों में संसार के समस्त तत्त्व नहिं हैं। प्लेटो का मत है - “वचिर अन्तमि एवं सार्वभौमकि महत्त्व वाले होते हैं। यहीं वे परमाणु हैं जनिसे वशिव को रूप प्राप्त होता है। ये वे आदरश अथवा प्रतमिन हैं जनिके द्वारा उचित की परीक्षा की जाती है। ये वचिर अन्तमि तथा अपरविरुद्धनीय हैं।”

जड़ प्रवृत्तिकी अपेक्षा मनुष्य का महत्त्व - आदरशवाद के अनुयायी जड़ प्रकृतिकी अपेक्षा मनुष्य को अधिकि महत्त्व देते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्य में वचिर तथा अनुभव करने की शक्ति होती है क्योंकि आदरशवादी अनुभव जगत को अधिकि महत्त्व देते हैं इसलए अनुभवकरता स्वयं और भी अधिकि महत्त्वपूरण हो जाता है। मनुष्य विकियुक्त तथा बुद्धियुक्त प्राणी है। अतः वह अन्य पशुओं की भाँति वातावरण का केवल दास ही नहीं बना रहता है अपतु उसमें आवश्यकतानुसार परविरुद्ध भी करता है, देवत्व का स्थान ग्रहण करता है तथा अपनी अनके प्रकार की मानसिकि, धार्मकि एवं कलात्मक क्रयियाओं में भाग लेने के परणिमस्वरूप धर्म, आचारशास्त्र, कला तथा साहित्य का सृजन भी करता है। रस्क ने मनुष्य के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - “इस आध्यात्मकि तथा सांस्कृतकि वातावरण का नरिमाण स्वयं मनुष्य ने ही किया है अरथात् समस्त नैतकि तथा अध्यात्मकि वातावरण समस्त मनुष्यों की रचनात्मक क्रयियाओं का ही फल है।”

आध्यात्मकि सत्यों तथा मूल्यों में वशिवास - आदरशवादीयों के अनुसार जीवन का लक्ष्य आध्यात्मकि मूल्यों तथा सत्यों को प्राप्त करना है। ये अध्यात्मकि मूल्य हैं - (1) सत्यं (2) शविम् (3) सुन्दरम्। आदरशवादीयों के अनुसार ये मूल्य सदैव अमर हैं। जो मनुष्य इन अध्यात्मकि मूल्यों को जान लेता है वह ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। दूसरे शब्दों में, इन मूल्यों को प्राप्त करना ही ईश्वर की प्राप्ति है अतः मनुष्य के जीवन का चरम लक्ष्य इन्हीं मूल्यों को प्राप्त करना है। आदरशवादी का यह वशिवास है कि ये तीनों मूल्य एक-दूसरे को पृथक हैं। इन तीनों मूल्यों को अलग-अलग ही प्राप्त किया जा सकता है। सत्य को प्राप्त करके शवि तथा सौदर्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। परन्तु यह नशिचति है कि इनमें से प्रत्येक आध्यात्मकि मूल्य को प्राप्त करने क्या लए मन की तीनों क्रयियाँ - (1) ज्ञान (2) इच्छा का

अनुभव, तथा चेष्टा अरूपात् कुछ करने की इच्छा अवश्य सहायक होती है। ज्ञान के द्वारा सत्य को तथा इच्छा के द्वारा सौदर्य को एवं चेष्ठा अथवा प्रयत्न के द्वारा शविं को प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार आदर्शवादीयों के अनुसार मनुष्य के जीवन का लक्ष्य इन तीनों आध्यात्मिक मूल्यों को निःसिवारथ रूप से प्राप्त करके सत्यं को सत्य के लिए, शविं को शवि के लिए तथा सुन्दर को सुन्दर के लिए अपने जीवन में ढालना चाहिये। जेऽएस० रास का भी यह मत है - “ आदर्शवादीयों के अनुसार शविं, सत्यं तथा सुन्दरं निष्पेक्ष गुण हैं जिसमें प्रत्येक्ष अपनी आवश्यकता के कारण उपस्थिति है तथा वह अपने आप में पूर्णतया वांछनीय है। ”

हेगेल का दर्शन

हेगेल का दर्शन निष्पेक्ष प्रत्ययवाद या चिदिवाद (Absolute Idealism) अथवा वस्तुगत चैतन्यवाद (Objective Idealism) कहलाता है; क्योंकि उनके मत में आत्मा-अनात्मा, दृष्टा-दृश्य, एवं प्रकृति-पुरुष सभी पदारथ एक ही निष्पेक्ष ज्ञानस्वरूप परम तत्व या सत् की विभिन्न अभिव्यक्तियों हैं। उनके अनुसार विश्व न तो अचेतन प्रकृतिया पुद्गलों का परिणाम है और न किसी परचिछन्न व्यक्ति के मन का ही खेल। जड़-चेतन-गुण-दोष-मय समस्त संसार में एक ही असीम, अनादि एवं अनंत चेतन तत्व, जिसे हम परब्रह्म कह सकते हैं, ओतप्रोत है। उससे पृथक् किसी भी पदारथ की सत्ता नहीं। वह निष्पेक्ष चिदि या परब्रह्म ही अपने आपकी अपनी ही स्वाभाविकी कर्या से विविध वस्तुओं या नैसर्गिक घटनाओं के रूप में सतत प्रकट करता रहता है। उसे अपने से पृथक् किसी अन्य साधन या सामग्री की आवश्यकता नहीं। हेगेल के अनुसार पुद्गलात्मक विश्व और हमारे तन, परस्पर भनिन होने पर भी, एक ही निष्पेक्ष सक्रिय परब्रह्म की अभिव्यक्तियों होने के नाते एक दूसरे से घनषिठतापूरुषक संबंधित एवं अवयोज्य हैं। हेगेल के विचार में संसार का सारा ही विस्तारात्मक कर्याकलाप सक्रिय ब्रह्म का ही कर्याकलाप है। क्या जड़ क्या चेतन, सभी पदारथ और प्राणी उसी एक निष्पेक्ष विद्रूप सत् के सीमति या परचिछन्न व्यक्त रूप हैं। जड़ीभूत प्रकृति, प्राणयुक्त वनस्पतजिगत्, चेतन पशुपक्षी तथा स्वचेतन मनुष्यों के रूप में वही एक परब्रह्म अपने आपको क्रमशः अभिव्यक्त करता है और उसकी अबतक की अभिव्यक्तियों में आत्मसंवित्तियुक्त मानव ही सर्वोच्च अभिव्यक्ति है, जिसके दार्शनिक, धार्मिक तथा कलात्मक उत्तरोत्तर उत्कर्ष के द्वारा ब्रह्म के ही नज़ी प्रयोजन की पूरती होती है। दूसरे शब्दों में, ब्रह्म अपने आपको विश्व के विविध पदारथों के रूप में प्रकट करके ही अपना विकास करता है।

इस प्रकार, हेगेल का निष्पेक्ष ब्रह्म एक सक्रिय मूरत सार्वभौम (Concrete universal) या गत्यात्मक (Dynamic) एवं ठोस सार्वभौत तत्व है, अमूरत सार्वभौम (Abstract universal) नहीं। वह शंकराचार्य के ब्रह्म के सदृश न तो शांत या कूटस्थ (Static) है और न भेदशून्य। हेगेल ने शैलगि के भेदशून्य (Differenceless) ब्रह्म को एक ऐसी अंधकारपूर्ण रात्रि के समान बताकर, जिसमें विविध रंगों की सभी गौण काली दखिई पड़ती हैं, सभी भेदशून्य ब्रह्मवादियों की कटाक्षपूर्ण आलोचना की है। शैलगि चराचरात्मक समस्त विश्व की आविभूति ब्रह्म से स्वीकार करते हुए भी उसे सब प्रकार के भेदों से रहति तथा प्रपञ्च के परे मानते थे। परंतु भेदशून्य अगत्यात्मक, तत्व से भेदपूर्ण तथा गत्यात्मक सृष्टि के उदय या विकास को स्वीकार करना हेगेल को युक्तियुक्त नहीं प्रतीत हुआ। उन्होंने ब्रह्म को विश्वातीत नहीं माना। हेगेल का ब्रह्म किसी हृद तक श्रीरामानुजाचार्य के ईश्वर से मिलिता जुलता है। वे, श्रीरामानुजाचार्य की तरह, ब्रह्म के सजातीय विजितीय भेद तो नहीं मानते, परंतु उसमें स्वगतभेद अवश्य स्वीकार करते हैं। उन्होंने उसे भेदात्मक अभेद (Identity-in difference) या अनेकतागत एकता (unity-in-diversity) के रूप में स्वीकार किया है, शुद्ध अभेद या कोरी एकता के रूप में नहीं। इसी प्रकार, श्रीरामानुजाचार्य का सदिधांत भी विशिष्टाद्वैत है, शुद्धाद्वैत या अद्वैत नहीं। हेगेल छांदोग्योपनिषद्

के "सर्व खलुवदि ब्रह्म" (3.14.1), ऋग्वेद के "पुरुष एवेदं सर्वम्" तथा श्रीमद्भगवद्गीता के "सर्वतः परणिपावं" (13.13) आदि सदिधांत के अनुमोदक तो अवश्यमेव कहे जा सकते हैं। परंतु मांडूक्योपनिषद् के "अमात्रश्चतुरथो व्यवहार्यः पूरपंचोपशमा..." (12) सदिधांत के माननेवाले नहीं।

हेगेल ने क्रयित्वमक एवं गतशील वशिव के वभिन्न रूपों में होनेवाली ब्रह्म की आत्माभविक्तिको एक वशिष्य यौक्तकि या बौद्धिकि नयिम के अनुसार घटति होनेवाली माना है। उनका कहना था कि सत्य यौक्तकि है और यौक्तकि सत्य है। दूसरे शब्द में, उनके अनुसार बौद्धिकि वचिर का नयिम और संसार के वकिस का नयिम एक ही है और उन्होंने यह नयिम वरिध या वरिध का नयिम (Law of Contradiction) बतलाया है। इसके अनुसार जडात्मक जगत एवं वैयक्तकि मन (mind) दोनों ही के रूप में नरिपेक्ष ब्रह्म के वकिस का हेतु उस तत्व का आंतरकि वरिध (opposition) या व्याघात (Contradiction) ही है। हेगेल के अनुसार दो वरिधी या परस्पर व्याघातक वचिरों या पदार्थों का समन्वय एक तीसरे वचिर या पदार्थ में हुआ करता है। उदाहरणारथ, हमारे मन में सर्वप्रथम "सत्" (being) का वचिर उदय होता है, या यों कहए कि संसार के समस्त पदार्थों की आदि अवस्था "सत्" ही है। परंतु "केवल सत्" या "सन्मात्र" वस्तुतः असत् सदृश है। अतः सत् के अंतस्थल में ही असत् या अभाव (non-being) सन्नहिति है। और सत् असत् की यह वपिरतपित्ति ही सत् के भावी वकिस का मूल हेतु बन जाती है। चूँकि वपिरतपित्ति या वरिध यौक्तकि वचिर को सहय नहीं, अतः यह सूबाव से ही उसके नरिकरण की ओर अग्रसर हो जाता है तथा सत् और असत् नामक वरिधी प्रत्ययों के समन्वय का नष्टिपादन "भव" (becoming) नामक प्रत्यय में कर देता है। हेगेल प्रारंभकि प्रत्यय को पक्ष या नघिन (Thesis), उसके वरिधी प्रत्यय को प्रतपिक्ष या प्रतधिन (Antithesis) तथा उनके मलिनेवाले प्रत्यय को समन्वय या समाधान (Synthesis) कहते हैं और उनकी यह पक्ष से समन्वयोन्मुखी पूरी प्रक्रयि वरिध समन्वय न्याय या द्वंद्व-समन्वय वधि (Dialectical method) अथवा त्रक्तिवाव (Dialecticism) नाम से जानी जाती है। उपर्युक्त उदाहरण में "सत्" पक्ष, "असत्" प्रतपिक्ष तथा "भव" समन्वय है। इस प्रकार हेगेल के वरिध-समन्वय-न्याय में पक्ष, प्रतपिक्ष, एवं समन्वय तीनों ही का समाहर होता है। इसे कुछ और अधिकि स्पष्ट रूप से समझने के लए हम अपने बाह्य ज्ञान को लें और देखें कि उसमें यह नयिम कसि प्रकार लागू होता है। हेगेल के कथनानुसार, कसी को भी बाह्य ज्ञान तभी होता है जब पहले ज्ञेय पदार्थ का वषिय द्वारा ज्ञाता या वषियी का वरिध होता है (अरथात् वह वषिय उस तथाकथति वषियी को उसके बाहर नकिलता है) और तत्पश्चात् वह वषियी उस वषिय से वशिष्ट होकर अपने आपमें समाविष्ट होता है। यहाँ "वषियी" पक्ष तथा "वषिय" प्रतपिक्ष हैं और उनका समन्वय वषियी द्वारा प्राप्त वषिय संबंधी ज्ञान से होता है।

वस्तुतः हेगेल के मत में वचिर एवं वशिव के सारे ही वकिस की प्रगति, अनविर्य रूप से, इसी वरिध समन्वय न्याय के अनुसार होती है। उन्होंने अनुभव या संसार के प्रायः सभी क्षेत्रों की व्याख्या में इस न्याय की प्रयुक्तता को प्रदर्शिति करने का दुःसाध्य किति प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। उनका कथन है कि विश्व में जो कुछ भी होता है वह सब इस नयिम के अनुसार होता है और इसके परणिमस्वरूप उत्तरोत्तर नवीन भेदप्रभेद या पदार्थों का आवरिभाव होता रहता है। कोई भी भेद कभी भी नरिपेक्ष प्रत्यय या परब्रह्म के बाहर नहीं होता और न वह ब्रह्म ही कभी प्राप्त्यकि पदार्थों से पृथक् होता है परंतु संसार में कभी ब्रह्म की संभावयताओं (Potentialities) का अंत नहीं होता और इस दृष्टि से हम उसे संसारातीत भी कह सकते हैं। हेगेल ने इसी ब्रह्म या नरिपेक्ष प्रत्यय में समस्त भूत, वर्तमान एवं भावी भेदों का समन्वय करने का प्रयत्न किया है।